प्रवचन-७३, श्लोक-१०३-१०४, गाथा-७३-७४, मंगलवार, अषाढ़ कृष्ण ६ (गुजराती), दिनांक १३-०७-१९७१

१०३ वाँ कलश।

स्वस्वरूपस्थितान् शुद्धान् प्राप्ताष्टगुणसम्पदः।
नष्टाष्टकर्मसन्दोहान् सिद्धान् वन्दे पुनः पुनः ।।१०३।।

१०३ कलश, ७३ गाथा के ऊपर।

सिद्ध भगवान **जो निज स्वरूप में स्थित हैं,...** अपने आनन्द आदि अनन्त गुण की परिणति निर्मल, उसमें सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। **जो शुद्ध हैं;...** परिपूर्ण पवित्र हैं। **जिन्होंने आठ गुणरूपी सम्पदा प्राप्त की है...** अनन्त गुण। अनन्त समकित, अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि आठ गुण की पर्याय प्राप्त की है। **जिन्होंने आठ कर्मों का समूह नष्ट किया है, उन सिद्धों को मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ।** ऐसे सिद्ध भगवान—णमो सिद्धाणं। ऐसे सिद्ध को पहिचानकर मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ, ऐसा टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं।

अब ७३ वीं गाथा, उसकी टीका।

टीका : यहाँ आचार्य का स्वरूप कहा है। इस ओर है न? **[भगवन्त आचार्य कैसे होते हैं?]** जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के शासन में आचार्यों का स्वरूप कैसा होता है, उसका वर्णन करते हैं। जो **ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण;...** हैं। निश्चय आत्मा आनन्द ज्ञानस्वरूप है, उसका जिसे ज्ञान आचरण अन्तर से शुद्ध ज्ञान का परिणमन प्रगट हुआ है। **ज्ञान...** आचार, **दर्शन...** आचार। सम्यग्दर्शन का शुद्ध परिणमन जिन्हें प्रगट हुआ है। **चारित्र...** स्वरूप आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा की रमणतारूप चारित्र, उसमें अन्तर रमणता, ऐसा चारित्र जिसे प्रगट हुआ है। **तप...** शुद्ध आनन्द आदि की परिणति शोभित, तपित, विशेष परिणित निर्मल दशा हुई है, उसे तप कहते हैं। **वीर्य...** जिसका बल पाँच आचार में परिणम रहा है। शुद्ध, पुण्य-पाप के रागरहित जिसका वीर्य स्वरूप की शुद्ध शक्ति का सत्व, उसका परिणमन करने में वीर्य समर्थ रहा है। इन **नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण;...** हैं। ऐसे जैनदर्शन में आचार्यों

का अन्त:स्वरूप ऐसा होता है। बाह्य में पंच आचार भी विकल्परूप होते हैं। जिनकी नग्नदशा होती है, जो जंगल में बसते हैं। आहाहा! तीनों काल में जैनशासन में आचार्य का ऐसा स्वरूप है।

जिसे **स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी...** पाँच इन्द्रियों का मद हाथी मानो मद में आये हों, उसका **दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण)...** ओहो! अतीन्द्रिय आनन्द जिन्हें उग्ररूप से परिणमित हुआ है। उसके द्वारा पाँच इन्द्रिय के विषयों को **पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी के दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण)...** हैं। विषय के विकल्प की दशा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! निर्विकल्प—रागरहित आनन्द की दशा में रमते, अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति में झूलते हुए उन्होंने पाँच इन्द्रिय के मद का तो नाश किया है। बहुत सूक्ष्म है। शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं। वह तो जड़-मिट्टी है। अन्दर भगवान पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप का जिन्हें परिणमन अर्थात् अवस्था अतीन्द्रिय उग्ररूप से परिणमी है, इसलिए उन्होंने पाँच इन्द्रियों को जीता है।

समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं,.. आत्मा में अकेली शान्ति, अविकारी दशा, निर्दोष पवित्रता प्रगट हुई है कि घोर उपसर्गों के प्रति भी विजय प्राप्त की है। प्रतिकूलता के अनन्त ढेर आवें, तो भी उनके प्रति यह ठीक नहीं है, ऐसा विकल्प जिन्हें नहीं होता। आनन्द में रमते हैं। आहाहा! उन्हें आचार्य कहते हैं। णमो आइरियाणं - आता है न? णमो लोए सव्व आइरियाणं। ऐसे ढाई में द्वीप सन्त, आचार्य जैनदर्शन के होते हैं। **समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं, इसलिए धीर...** हैं। एक बात। यह तीसरा बोल। **और गुणगम्भीर...** हैं। जिनके गुण की दशा इतनी गम्भीर है। साधारण जीव को उसका पता नहीं लगता, ऐसी दशा है। अतीन्द्रिय आनन्दपूर्वक निर्मल ज्ञान, श्रद्धा, आनन्द, शान्ति इत्यादि ऐसी दशा प्रगट हुई है कि जिसके गुण गम्भीर हैं। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन के आचार्य का स्वरूप है। **ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे भगवन्त आचार्य होते हैं।** लो, शब्द प्रयोग किया है। पहले तो कोष्ठक में डाला था। यह तो पाठ में आया। ऐसे भगवन्त आचार्य होते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री वादिराजदेव ने कहा है कि— दूसरे का आधार देते हैं। श्लोक।

पञ्चाचारपरान्नकिञ्चनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्,
चञ्चज्ज्ञानबलप्रपञ्चितमहापञ्चास्तिकायस्थितीन्।
स्फाराचञ्चलयोगचञ्चुरधियः सूरीनुदञ्चद्गुणान्,
अञ्चामो भवदुःखसञ्चयभिदे भक्तिक्रियाचञ्चवः।।

भक्तिक्रियाचञ्चवः चंचव। जैन साधु-आचार्य कैसे होते हैं? नीचे श्लोकार्थ।

पञ्चाचारपरायण हैं,... अन्तर के ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि वीर्य, तप में तत्पर हैं। शुद्ध आचरण में अन्दर पुण्य-पाप के रागरहित, आनन्द का धाम भगवान के पंचाचार में वे तत्पर हैं। आत्मा का आचरण, ऐसा कहते हैं। उसमें तत्पर हैं। वीतरागी परिणति में वे तत्पर हैं, ऐसा कहते हैं। **जो अकिंचनता के स्वामी हैं,...** जिन्हें एक परिग्रह का, राग का अंश नहीं और कपड़े का टुकड़ा नहीं, ऐसे जैन के आचार्य भगवान, भगवान ने वर्णन किये हैं। **अकिंचनता के स्वामी हैं,...** बाह्य में नग्नदशा, अन्तर में राग का कण भी जिन्हें नहीं है। आहाहा!

जिन्होंने कषायस्थानों को नष्ट किया है,... शुभ-अशुभराग, ऐसे जो कषाय अर्थात् विकारभाव, उनका जिन्होंने नाश किया है। वीतराग परिणति में झूलते हैं। आहाहा! **परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो महा पञ्चास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं,...** कहते हैं कि इस जगत में पंचास्तिकाय है अर्थात् काल के अतिरिक्त आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश - ऐसे पाँच अस्तिकाय। काल है, वह अस्ति है परन्तु काय नहीं है। इसलिए पाँच अस्ति में उसे नहीं लेना। ऐसा पंचास्तिकाय का स्वरूप **परिणमित ज्ञान के बल द्वारा...** मात्र धारणा में से नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान में परिणमन, अन्दर वीतरागी परिणमन हो गया है।

परिणमित ज्ञान के बल द्वारा... अकेली बात करने बैठे हैं, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेले पंचास्तिकाय भगवान ने कहे हैं, ऐसी धारणा की है और कहते हैं, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अन्तर पंचास्तिकाय जगत में हैं, उसका ज्ञान में परिणमन हो गया है। ज्ञानस्वरूप आत्मा, चिदानन्दस्वरूप आत्मा का ज्ञान का परिणमन ही अन्दर हो गया

है। परिणमन के बल द्वारा पंचास्तिकाय का कथन करते हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान के पास सुना हुआ है, सुना हुआ कहते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! शुद्ध चैतन्यभगवान पवित्र की परिणति, जिसकी दशा हो गयी है, कहते हैं। उस दशा के परिणमनपूर्वक पंचास्तिकाय का कथन करते हैं।

महापंचास्तिकाय... भाषा ऐसी ली है न? आकाश लोकालोक का आकाश, आकाशास्तिकाय, एक-एक जीव असंख्य प्रदेशी- ऐसे अनन्त आत्माएँ, उससे अनन्त गुणे परमाणु, धर्मास्ति और अधर्मास्ति, ऐसी महा पंचास्तिकाय की मर्यादा - स्थिति को वे समझाते हैं। जगत में एक ही आत्मा है अथवा अनन्त आत्मा ही है, ऐसा नहीं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे पाँच अस्तिकाय। अस्ति अर्थात् हैं; बहुत से प्रदेशों का समूह अर्थात् काय। भाषा पूरी अलग! ऐसा स्वरूप है।

परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो... जिनका ज्ञानस्वरूप अन्दर वीतरागभाव से परिणम गया है। ऐसे परिणमन के बल द्वारा महापंचास्ति - ऐसी भाषा ली है न? आकाश का तो कहीं अन्त नहीं, ऐसा आकाश है। उनकी **स्थिति को समझाते हैं,...** आचार्य हैं न? **विपुल अचंचल योग में (विकसित स्थिर समाधि में) जिनकी बुद्धि निपुण है...** विपुल अचंचल योग। **(विकसित स्थिर...)** आनन्द। स्थिर समाधि-शान्ति। अकषाय शान्ति। वीतरागभाव की शान्ति का परिणमन, ऐसी समाधि अचंचल योग विपुल, **जिनकी बुद्धि निपुण है...** आनन्द की समाधि में जिनकी बुद्धि निपुण है। आनन्द की शान्ति और समाधि। समाधि अर्थात् वे बाबा जोगी करें, उनकी बात यहाँ नहीं है, हों! समाधि। लोगस्स में यह आता है...। आता है न लोगस्स में? अर्थ किसे आता है? भगवान जाने अर्थ तो **'समाहिवरमुत्तमं दिंतु। चंदेसु निम्मलयरा, आईच्चेसु अहियं पयासयरा;'** यहाँ तो **'समाहिवरमुत्तमं दिंतु।'** इसका अर्थ क्या? मुझे उत्तम समाधि दो। कौन सी समाधि? वे बाबा करते हैं वह? (नहीं)

यहाँ तो आधि, व्याधि, उपाधि रहित आत्मा की वीतरागी शान्ति को समाधि कहते हैं। आधि अर्थात् मन के संकल्प-विकल्परहित; व्याधि अर्थात् शरीर के रोगरहित और उपाधि अर्थात् संयोगरहित - ऐसी आत्मा में शान्त.. शान्त.. शान्त.. उसे शान्ति का समुद्र उछला है। आहाहा! विकसित हुआ है न? कहा न? निपुण अर्थात् विकसित। स्थिर

समाधि में बुद्धि निपुण है। उसमें वे आचार्य चतुर हैं। परम आनन्द की शान्ति, उसमें वे झूलते हैं, उसमें वे निपुण हैं।

जिनको गुण उछलते हैं,... लो। आत्मा के जो अनन्त गुण हैं, वे उछलते हैं अर्थात् पर्याय में परिणमते हैं। जैसे समुद्र में ज्वार आता है, अन्दर से उछलकर ज्वार आता है; इसी प्रकार मुनि को, आचार्यों को अन्तर में अनन्त गुण का जो समुद्र भरा है, वे गुण उछलते हैं। अन्तर के अनुभव की दृष्टि के जोर से अनन्त-अनन्त आनन्द आदि गुण की दशा उछलती है। उछाला मारती है। आहाहा! गजब बात, भाई! समुद्र उछलता है, कहते हैं। भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त गुण हैं। एक-एक आत्मा में (अनन्त-अनन्त गुण हैं)। वे अनन्त-अनन्त गुण उछलते हैं। उसकी पर्याय में ज्वार आता है। क्या होगा यह अनादि से खबर नहीं। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त आनन्द और ज्ञान तथा शान्ति से भरपूर तत्त्व है। ऐसे तत्त्व का जहाँ अनुभव किया और उसमें एकाग्र हुआ तो अनन्त शक्तिरूप गुण हैं, वे उसकी पर्याय में उछलते हैं। लो, वह आया न? शक्ति उछलती है। ज्ञान में दूसरी शक्तियाँ उछलती हैं। शक्ति में आता है न? सैंतालीस शक्ति। आहाहा! ज्ञान का सम्यक् परिणमन होने पर, शुद्ध चैतन्यद्रव्य का आश्रय लेने पर सम्यग्ज्ञान का परिणमन होने पर अनन्त गुणों की पर्याय, इस ज्ञान की पर्याय में उछलती है, आती हैं। आहाहा! धर्मी को पुण्य-पाप का राग नहीं आता, नहीं उछलता। आहाहा!

जिनको गुण उछलते हैं,... अज्ञानी को विकार उछलता है। पुण्य-पाप के भाव उछाला मारते हैं। अन्धा होकर उनमें पड़ता है। अस्थिरता में जुड़ जाता है। राग में एकाकार हो जाता है। यह अन्दर आनन्द में एकाकार हो जाए, **उन आचार्यों को...** ऐसे वीतराग मार्ग के अन्तर अनुभवी सन्तों को **भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम,...** स्वयं मुनि हैं न? टीका करनेवाले मुनि हैं। इसलिए ऐसे जैन के आचार्य होते हैं, उन्हें हम **भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम,...** वापस ऐसा। ऐसे सन्तों की भक्ति करने में हम कुशल हैं। हमें खबर है कि ऐसे सन्त हैं, उनका बहुमान करने में हम चतुर है, सयाने हैं, कुशल हैं, निपुण हैं, चतुर हैं।

मुमुक्षु : राग में...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में अर्थात् उस गुण में। उनके गुण को वन्दन करने में चतुर

हैं। भले विकल्प हो। आहाहा! यह मुनि हैं, वह भी भावलिंगी सन्त हैं। जिन्हें अनन्त आनन्द उछला है। सच्चे मुनि तो उन्हें कहते हैं। वस्त्र त्यागकर बैठे, इसलिए मुनि हो गया—ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह मुनि स्वयं कहते हैं, अहो! ऐसे आचार्य जैन में!

मुमुक्षु : आचार्य, आचार्य को कहते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनि, आचार्य को कहते हैं। टीकाकार मुनि हैं न? मुनि कहते हैं कि हम... पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। ये वादिराज आचार्य हैं। परन्तु ये स्वयं आधार देते हैं न? वादिराज पंचाचार ये करते हैं, आचार्य कहते हैं। परन्तु हम भी यह करते हैं। आहाहा! वे तो पूर्व में हो गये हैं।

ऐसे हम, भवदुःखराशि को भेदने के लिये... लो, ऐसा ही आवे। कथन क्या आवे? ऐसे सन्तों को, आचार्य, आचार्य को; आचार्य, मुनि को; मुनि, आचार्य को... आहाहा! **...भेदने के लिये पूजते हैं।** भव के दुःख, संसार का जाल, स्वर्ग-नरक के भव के दुःख का जाल.. आहाहा! उसे छेदने के लिए हम वन्दन करते हैं, ऐसा कहते हैं। उसमें भव में कुछ नरक और तिर्यंच के भव छेदने के लिए, ऐसा कुछ नहीं। सम्पूर्ण सब भवदुःख की राशि - चारों गतियाँ... आहाहा! भव के दुःख का ढ़ेर। चौरासी के अवतार में सर्वत्र दुःख है, भाई! देव दुःखी, सेठ दुःखी, राजा दुःखी, सब भिखारी, राग के भिखारी हैं। विकार के अभिलाषी सब दुःखी हैं।.....आता है न? वीतरागी मुनि भी, हों! आता है न यह? अकिंचितता के स्वामी हैं। अन्तर में अकिंचनता और बाहर में अकिंचनता। धन्य अवतार! उन्होंने अवतार सफल किया है।

चारित्रस्वरूप जिन्हें अन्तर में... नग्नदशा बाह्य और अन्तर में चारित्र परिणम गया है। आहाहा! जिन्हें पूरी दुनिया की दरकार नहीं है। ऐसा आत्मा, उसे भक्त कहते हैं, लो, आचार्य महाराज के भी भक्त आचार्य और मुनि भी आचार्य के भक्त हैं। **भेदने के लिये पूजते हैं।** भाषा तो ऐसी ही आवे न? 'वंदे तद्गुण लब्ध्ये' आया था।

हमारे प्राप्ति। भाव तो अन्दर में यह है। भले अन्दर में विकल्प है। उससे कुछ प्राप्त नहीं होता। लो, आचार्य स्वयं अपनी बात करते हैं, और ऐसे आचार्य होते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ, ऐसा भी कहते हैं।

गाथा-७३

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति।।७३।।

पञ्चाचारसमग्राः पञ्चेन्द्रियदन्तिदर्पनिर्दलनाः।
धीरा गुणगम्भीरा आचार्या ईदृशा भवन्ति।।७३।।

अत्राचार्यस्वरूपमुक्तम्। ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याभिधानैः पञ्चभिः आचारैः समग्राः; स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राभिधानपञ्चेन्द्रियमदान्धसिन्धुरदर्पनिर्दलनदक्षाः; निखिलघोरोपसर्गविजयोपार्जितधीरगुणगम्भीराः; एवं लक्षणलक्षितास्ते भगवन्तो ह्याचार्या इति।

तथा चोक्तं श्रीवादिराजदेवैः ह्न

(शार्दूलविक्रीडित)

पञ्चाचारपरान्नकिञ्चनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्,
चञ्चज्ज्ञानबलप्रपञ्चितमहापञ्चास्तिकायस्थितीन्।
स्फाराचञ्चलयोगचञ्चुरधियः सूरीनुदञ्चद्गुणान्,
अञ्चामो भवदुःखसञ्चयभिदे भक्तिक्रियाचञ्चवः।।

तथाहि ह्न

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं।
पंचेन्द्रि-गज के दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं।।७३।।

गाथार्थ :—[पञ्चाचारसमग्राः] पञ्चाचारों से परिपूर्ण, [पंचेन्द्रियदंतिदर्प्प-निर्दलनाः] पञ्चेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करनेवाले, [धीराः] धीर और [गुण-गंभीराः] गुणगम्भीर—[ईदृशाः] ऐसे [आचार्य्याः] आचार्य [भवन्ति] होते हैं।

टीका :—यहाँ आचार्य का स्वरूप कहा है।

[भगवन्त आचार्य कैसे होते हैं ?] (१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य नामक पाँच आचारों से परिपूर्ण; (२) स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र नाम की पाँच इन्द्रियोंरूपी मदान्ध हाथी के दर्प का दलन करने में दक्ष (पञ्चेन्द्रियरूपी मदमत्त हाथी के मद को चूरचूर करने में निपुण); (३-४) समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते हैं, इसलिए धीर और गुणगम्भीर—ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे भगवन्त आचार्य होते हैं।

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री वादिराजदेव ने कहा है कि —

(वीरछन्द)

पञ्चाचार परायण नष्ट कषायस्थान, अकिञ्चन हैं।
ज्ञान परिणमन द्वारा जो पञ्चास्तिकाय समझाते हैं॥
विपुल अचंचल योग निपणुमति आचार्यों को गुण उछलें।
भक्ति क्रिया में कुशल हुए हम भवभय भेदन को पूजें॥

श्लोकार्थ : जो पञ्चाचारपरायण हैं, जो अकिंचनता के स्वामी हैं, जिन्होंने कषायस्थानों को नष्ट किया है, परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो महा पञ्चास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं, विपुल अचञ्चल योग में (विकसित स्थिर समाधि में) जिनकी बुद्धि निपुण है और जिनको गुण उछलते हैं, उन आचार्यों को भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम, भवदुःखराशि को भेदने के लिये पूजते हैं।

गाथा-७३ पर प्रवचन

व्यवहार-चारित्र का अधिकार, ७३ गाथा। आचार्य कैसे होते हैं ? जैनदर्शन में वीतराग के मार्ग में पंचपरमेष्ठी कैसे होते हैं, उनका वर्णन है। अरिहन्त और सिद्ध का वर्णन आ गया। आज आचार्य का वर्णन

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।*
धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति।।७३।।

* इस गाथा की टीका पर प्रवचन श्लोक १०३ के बाद आ चुका है।

हैं धीर गुण गंभीर अरु परिपूर्ण पंचाचार हैं।
पंचेन्द्रि-गज के दर्प-उन्मूलक निपुण आचार्य हैं॥७३॥

इसकी टीका। क्या कहा? कलश बाकी है ऐसा न?

१०३, मैं पढ़ गया था इसलिए मानो ऐसा कि आ गया।

मुमुक्षु : अन्दर पढ़ लिया होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर पढ़ गया होऊँ न इसलिए।

श्लोक-१०४

और इस ७३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

(हरिणी)

सकलकरणग्रामालम्बाद्विमुक्तमनाकुलं,
स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम्।
शम-दम-यमावासं मैत्री-दया-दम-मंदिरं,
निरुपमिदं वन्द्यं श्री-चन्द्र-कीर्ति-मुनेर्मनः॥१०४॥

(हरिगीतिका)

जो सकल इन्द्रियग्राम के आलम्बनों से मुक्त हैं।
जो हैं अनाकुल स्वहितरत निर्वाण कारण हेतु हैं॥
शम दम दया मैत्री तथा यम आदि गुण जिसमें रहें।
श्री चन्द्रकीर्ति मुनीश का निरुपम हृदय मम वन्द्य है॥

[श्लोकार्थः—] सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित, अनाकुल, स्वहित में लीन, शुद्ध, निर्वाण के कारण का कारण (मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण), शम-दम-यम[१] का निवासस्थान, मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)—ऐसा यह श्रीचन्द्रकीर्तिमुनि का निरुपम मन (चैतन्यपरिणमन) वन्द्य है।

श्लोक-१०४ पर प्रवचन

और इस ७३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं —

सकलकरणग्रामालम्बाद्विमुक्तमनाकुलं,
स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम् ।
शम-दम-यमावासं[1] मैत्री-दया-दम-मंदिरं,
निरुपमिदं वन्द्यं श्री-चन्द्र-कीर्ति-मुनेर्मनः ।।१०४।।

कलश १०४। आचार्य ने आचार्य को नमन किया अर्थात् स्वयं मुनि अब, मेरे गुरु को वन्दन। गुरु-आचार्य को। देखो! आहाहा! उनके आचार्यगुरु भी ऐसे हैं, ऐसा ज्ञान में निर्णय हो गया है। है न? चन्द्रकीर्ति मुनि का मन अर्थात् चैतन्यपरिणति। मेरे आचार्य के, मेरे गुरु-आचार्य को वीतराग परिणति परिणम गयी है, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा!

श्लोकार्थ : सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित,... क्या कहते हैं? अपने गुरु जो चन्द्रकीर्ति। पद्मप्रभमलधारिदेव के आचार्य हैं। ओहोहो! मुनि भी देखो न, कैसे पके हैं! आचार्य ऐसे, लो! पद्मप्रभमलधारि मुनि... आहाहा! कहते हैं, हमारे गुरु और उन्हें हमने पहिचाना है कि उनका चैतन्य परिणमन, वीतरागी दशा कैसी है? **सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बनरहित,...** उनका परिणमन है। आहाहा! अन्तर के वीतरागी निर्दोष आनन्द का परिणमन, अवस्था जिसे इन्द्रिय के समूह के आलम्बन का अभाव है, ऐसी अतीन्द्रिय आलम्बन दशा प्रगट हुई है। **अनाकुल,...** है। हमारे गुरु का परिणमन कैसा है? आनन्दरूप है, अनाकुल है। आहाहा! दूसरे मुनि की बात जान ली? ज्ञात हो जाती है?

मुमुक्षु : केवलज्ञान होवे तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान... यह तो अभी जानते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में और उनकी परिणति शुद्ध है, उसे जान लिया। आहाहा!

---

१. शम = शान्ति; उपशम। दम = इन्द्रियादि का दमन; जितेन्द्रियता। यम = संयम।

स्व-परप्रकाशक ज्ञान का फल अन्दर है। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ, उस बल में हमारे आचार्य-मुनि महाराज ऐसे थे, उनका परिणमन ऐसा जो मन। मन अर्थात् उनका परिणमन, उसे मैं वन्दन करता हूँ। पंच महाव्रत के विकल्प और वह तो राग है, वह कोई वन्दन करनेयोग्य नहीं है। गजब बात! वह कोई मुनिपना नहीं है। पंच महाव्रत वह तो विकल्प राग है। वह कहीं चारित्र नहीं है, वन्दनीय नहीं है, ऐसा कहते हैं। वन्दनीय तो भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द के परिणमन अवस्थारूप उग्ररूप से परिणमे, वह चारित्र और वह वन्दन के योग्य है। नग्नपना हो, वह कहीं वन्दनीय नहीं है। होता है, निमित्तरूप से (दशा) ऐसी होती है परन्तु जड़ की दशा, अन्तरंग में उतरे हुए गहरे-गहरे अन्दर में जाकर जिसने चैतन्य का पता लिया... आहाहा! ऐसी जो वीतरागी परिणति दशा है, वह अनाकुल है। बिल्कुल आकुलता है ही नहीं। आनन्द.. आनन्द.. आनन्द..।

स्वहित में लीन,... हैं। हमारे गुरु, आचार्य स्वयं के हित में लीन हैं। देखो! पर का हित कैसे... आहाहा! **स्वहित में लीन,...** है। आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वरूप, ऐसा जो स्वहित, उसमें वे लीन हैं। **शुद्ध...** है। जिनका परिणमन / वीतरागी अनाकुल दशा, स्वहित में लीनवाली, इन्द्रियों के आलम्बनरहित शुद्धदशा है। पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध है। पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव तो अशुद्ध है। यह तो शुद्धदशा है। आहाहा! **निर्वाण के कारण का कारण...** है। मुक्ति का कारण तो शुक्लध्यान स्वयं का; और यह चैतन्यपरिणमन, मेरे गुरु का परिणमन, वह निमित्त है।

(मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण),... भगवान हमारे गुरु, आचार्य वीतरागी हुए, हों! अकेले राग से धर्म माने और पुण्य से धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वह धर्मी नहीं, साधु नहीं और आचार्य भी नहीं। आहाहा! यह तो पंचम काल के मुनि हैं, लो! **निर्वाण के कारण का कारण...** है। मोक्ष, आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा है। उसका कारण शुक्लध्यान है। उसके आश्रय में उपादानरूप से द्रव्य और बाह्य निमित्तरूप से हमारे गुरु का चैतन्य परिणमन। लो, गाथा ही ऐसी है। उनका अभिप्राय अन्तरंग कारण, ऐसा कहा न? यहाँ अन्तरंग की ही बात ली है।

शम-दम-यम का निवासस्थान,... है। आहाहा! वीतरागी भगवान आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई वीतरागी दशा शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. उपशम। शान्ति और

उपशम (का) तो निवासस्थान है। शान्ति को रहने का घर है। आहाहा! आत्मा की शान्ति, अकषायपरिणति के रहने का, वह गुरु का चैतन्यपरिणमन, उस शान्ति का निवासस्थान है। आहाहा! **दम = इन्द्रियादि का दमन; जितेन्द्रियता।** जितेन्द्रियता का निवास है। आहाहा! और **यम = संयम।** भाव संयम का निवासस्थान है। कहो, उस समय ऐसे मुनि होंगे न! ९०० वर्ष पहले।

ऐसा भगवान आत्मा अन्तर के शुद्धस्वभाव से परिणति होकर उछल रहा है। वह **शम-दम-यम का निवासस्थान,...** है। वह रहने का घर है। आहाहा! और **मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)...** है। उसमें भी दम था और इसमें भी दम है परन्तु वह निवासस्थान है, यह मैत्री दया दम का मन्दिर है, घर है। यह निवासस्थान कहा। धर्म की निर्विकल्प शुद्ध परिणति दशा, वह **मैत्री-दया-दम का मन्दिर (घर)...** है। **ऐसा यह श्रीचन्द्रकीर्तिमुनि का निरुपम मन (चैतन्यपरिणमन) वन्द्य है।** मन की व्याख्या चैतन्यपरिणमन है। भावमन, निर्विकल्पदशा, वीतरागीदशा मुनि की, वह हमारे वन्द्य है। उनके पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना वह नहीं – ऐसा कहते हैं। ऐसी दशा हमारे आदरणीय है। समझ में आया? लो, यह अरिहन्त, सिद्ध और आचार्य तीन की व्याख्या हुई। ऐसे आचार्य होते हैं। आहाहा! दिखायी देना दुर्लभ हो गया है। वीतरागमार्ग, परमेश्वर वीतराग तीर्थंकरदेव के शासन में तो ऐसे आचार्य होते हैं और आचार्य मनावे, मात्र बाह्य क्रियाकाण्ड करे, पंच महाव्रत के विकल्प हों और उसे धर्म माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। वे जैन के साधु भी नहीं, जैन के आचार्य भी नहीं।

मुमुक्षु : जैनधर्म में तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनधर्म में कहाँ रहे? अज्ञानधर्म में हैं। आहाहा! जैनधर्म तो पुण्य-पाप के राग से रहित, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई शुद्धपरिणति, वह जैनधर्म है। जैनधर्म कोई आत्मा की परिणति से दूर नहीं है। आहाहा! वह स्वयं शुद्धपरिणति, वह जैनशासन है। आहाहा! (समयसार) १५वीं गाथा में आया न? आत्मा परम आनन्द का धाम शुद्ध चैतन्यधन में से प्रगट हुई शुद्ध और वीतरागी दशा, वह वन्द्य और उसे जैनशासन कहने में आता है। ऐसा जैन शासन का परिणमन हमारे वन्दनीय है, ऐसा कहते हैं। इसमें गजब! बाहर में तो कुछ सूझ पड़े, ऐसा नहीं मिलता। यह सब करते हों, उन्हें तो कुछ नाम भी नहीं मिलता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे ? भगवान ! यह (शरीर) मिट्टी-जड़ है, इसका हलना-चलना होता है, वह तो जड़ के कारण है। बोलना होता है, वह जड़ के कारण से है। वह कहीं तेरा नहीं है। विकल्प उठे, इसकी दया पालूँ, व्रत पालूँ, वह सब राग है; वह कहीं धर्म नहीं है, वह कहीं जैनशासन नहीं है। आहाहा ! यह चन्द्रकीर्ति, अपने गुरु को याद करके उनका परिणमन जान लिया ? ऐई ! आहाहा ! छद्मस्थ, छद्मस्थ के परिणमन को जाने ?

मुमुक्षु : इस काल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में जाने। यहाँ किसकी बात आयी ? यह पंचम काल की तो बात है। पंचम काल के मुनि हैं और पंचम काल के गुरु को वन्दन करते हैं। आहाहा !....

गाथा-७४

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति।।७४।।

रत्नत्रयसंयुक्ताः जिनकथितपदार्थदेशकाः शूराः।
निःकाङ्क्षभावसहिताः उपाध्याया ईदृशा भवन्ति।।७४।।

अध्यापकाभिधानपरमगुरुस्वरूपाख्यानमेतद्। अविचलिताखण्डाद्वैतपरमचिद्रूपश्रद्धान-परिज्ञानानुष्ठानशुद्धनिश्चयस्वभावरत्नत्रयसंयुक्ताः; जिनेन्द्रवदनारविन्दविनिर्गतजीवादिसमस्त-पदार्थसार्थोपदेशशूराः; निखिलपरिग्रहपरित्यागलक्षणनिरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वभावनोत्पन्न-परमवीतरागसुखामृतपानोन्मुखास्तत एव निष्काङ्क्षाभावनासनाथाः; एवम्भूतलक्षणलक्षितास्ते जैनानामुपाध्याया इति।

जो रत्नत्रय से युक्त निकांक्षित्व से भरपूर हैं।
उवझाय वे जिनवर-कथित तत्वोपदेष्टा शूर हैं॥७४॥

गाथार्थ :—[रत्नत्रयसंयुक्ताः] रत्नत्रय से संयुक्त, [शूराः जिनकथितपदार्थ-देशकाः] जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और [निःकांक्षभावसहिताः] निःकाँक्षभावसहित—[ईदृशाः] ऐसे [उपाध्यायाः] उपाध्याय [भवन्ति] होते हैं।

टीका :—यह अध्यापक (अर्थात् उपाध्याय) नाम के परमगुरु के स्वरूप का कथन है।

[उपाध्याय कैसे होते हैं ?] (१) अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठानरूप[१] शुद्ध निश्चय—स्वभावरत्नत्रयवाले; (२) जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;

---

१. अनुष्ठान = आचरण; चारित्र; विधान; कार्यरूप में परिणत करना।

(३) समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप जो निरञ्जन निज परमात्मतत्त्व, उसकी भावना से उत्पन्न होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में सन्मुख होने से ही निष्काँक्षभावनासहित — ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे जैनों के उपाध्याय होते हैं।

गाथा-७४ पर प्रवचन

अब उपाध्याय। जैन के उपाध्याय कैसे होते हैं ? णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। णमो उवज्झायाणं परन्तु इसका णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, ऐसा किया। अन्तिम पद है, वह सबमें डालना। णमो लोए सव्व साहूणं है न ? वह सबमें डालना। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। अन्तिम पद सबको लागू पड़ता है।

अब उपाध्याय की व्याख्या। आहाहा!

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति।।७४।।

नीचे (हरिगीत)

जो रत्नत्रय से युक्त निकांक्षित्व से भरपूर हैं।
उवझाय वे जिनवर-कथित तत्वोपदेष्टा शूर हैं॥७४॥

आहाहा! **यह अध्यापक (अर्थात् उपाध्याय) नाम के परमगुरु के स्वरूप का कथन है।** जैन के **[उपाध्याय कैसे होते हैं ?] (१) अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठानरूप शुद्ध निश्चय-स्वभावरत्नत्रयवाले;...** होते हैं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा अन्दर त्रिकाल अविचल है। द्रव्य अखण्ड है, अद्वैत है। गुण-गुणी का भेद भी नहीं। परमचिद्रूप—त्रिकाल ज्ञानरूप, ऐसा आत्मस्वरूप, उसका श्रद्धान। उसकी श्रद्धा, वह समकित है। नवतत्त्व की श्रद्धा या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित नहीं है; वह तो विकल्प है, राग है।

परमचिद्रूप **अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप...** पूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान की श्रद्धा अर्थात् उसके सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करना, इसका नाम समकित है।

आहाहा! **अविचलित अखण्ड अद्वैत परम चिद्रूप के श्रद्धान, ज्ञान...** निष्कांक्ष भाव डाला, देखा? इसलिए उसमें क्या हेतु है? कि वे प्ररूपणा करते हैं, उसमें से ये मेरे शिष्य होंगे, मुझे मानेंगे, ऐसी कांक्षा नहीं होती। इसलिए निष्कांक्ष भाव डाला है। स्वाध्याय है न? ऐसे पढ़ाते हैं न? और इससे तो हमारे पास पढ़ें तो इतने तो हमें मानते होंगे, इतने तो मेरे शिष्य हुए। यह जैनदर्शन में ऐसी कांक्षा नहीं होती। कहो, समझ में आया? यह सब वजन यहाँ है।

ऐसे **निश्चय-स्वभावरत्नत्रयवाले;...** भाषा देखो! व्यवहार का निषेध किया। व्यवहाररत्नत्रय नहीं। निश्चय-स्वभावरत्नत्रय। आहाहा! त्रिकाल चैतन्यबिम्ब प्रभु, परमस्वभावभाव की श्रद्धा, ज्ञान और अनुष्ठान। स्वरूप में रमणता, वह अनुष्ठान। ऐसे आत्मा के स्वरूप में रमना, वह चारित्र, वह विधान, उसे इनने अमल में रखा, वह विधान, उसे अनुष्ठान कहते हैं। आहाहा! परम चिद्रूप अखण्ड अभेद की अन्तरश्रद्धा, उसका ज्ञान। उसका ज्ञान, वह ज्ञान। शास्त्र के पठन का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। यहाँ तो शास्त्र का थोड़ा कण्ठस्थ हुआ और कहने लगे तो हो गया। अब तुम दीक्षा-वीक्षा लो तो हमसे लेना। हम तुम्हें सिखायेंगे। वाड़ा बन्दी हो जाती है। दीक्षा लेना तो यहाँ लेना। कहते हैं कि ऐसा मार्ग वीतरागमार्ग नहीं हो सकता। आहाहा!

जिसे कांक्षा नहीं, इच्छा ही नहीं। यह प्ररूपणा करते हैं, समझाते हैं। यह तो निश्चयरत्नत्रयस्वभाववाले हैं। देखा? यहाँ स्वभावरत्नत्रय कहा। वह (व्यवहार) विभावरत्नत्रय हुआ। व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, वह विभाव है / राग है। ऐसे **शुद्ध निश्चय—स्वभावरत्नत्रयवाले; (२) जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए...** देखो! किसी ने कल्पना से शास्त्र या सूत्र बाँधे, वे नहीं। आहाहा! जिनेन्द्र के मुखरूपी अरविन्द-कमल। **उसमें से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह को...** जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—नौ तत्त्व। **जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;...** तो भी कांक्षा नहीं।

यह **णिक्कंखभावसहिया** ऐसा शब्द है न? निकांक्षभावसहित हैं, ऐसा। आहाहा! कि इतना अपन कहते हैं, बोलना आया, सिखाया; इसलिए अपने इतने माननेवाले होंगे। अपना पक्ष तो करेंगे, ऐसी कांक्षा धर्मात्मा को नहीं होती - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान।' अरे! दुनिया को सुनने को नहीं मिलता और उससे उल्टा मार्ग सुनने को मिलता है और मानते हैं, अरे रे! जिन्दगी चली जाती है। बाहर में कोई शरण नहीं। शरण तो भगवान आत्मा अपना स्वरूप, वह शरण है। उसके आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह स्वभावरत्नत्रय, ऐसे प्रगट हुए स्वभावरत्नत्रयवाले और भगवान के मुख से निकले हुए नव पदार्थ, उस उपदेश में शूरवीर, परन्तु ऐसे हों वे। भाई! ऐसा निश्चयस्वभावरत्नत्रय नहीं और उपदेश करने में समर्थ हैं, ऐसा नहीं... आहाहा! इसलिए पहले यह छापा है। अहो! पाठ है न! **रयणत्तयसंजुत्ता,** बाद में **जिणकहिय-पयत्थदेसया** बाद में लिया है। आहाहा!

शुद्धनिश्चय स्वभावरत्नत्रयवाले, ऐसे उपाध्याय। **जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थसमूह का उपदेश देने में शूरवीर;...** उपदेश तो वाणी के कारण वाणी है परन्तु ज्ञान के क्षयोपशम में अन्दर इतनी शूरवीरता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का इतना क्षयोपशम है, कि... भगवान ने कहे हुए पदार्थ को समझाने में समर्थ हैं, ऐसा। भाषा तो भाषा के कारण से है। परन्तु अन्दर के ज्ञान के क्षयोपशम में ऐसी दशा है। इस प्रकार से समझाते हैं। वे स्वभावरत्नत्रयवाले होते हैं वे।

समस्त परिग्रह के परित्यागस्वरूप जो निरञ्जन निज परमात्मतत्त्व, उसकी भावना से उत्पन्न होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में सन्मुख होने से... लो, वे निकाँक्ष क्यों हैं? आहाहा! वे **निज परमात्मतत्त्व,...** वापस। भगवान का तत्त्व नहीं। निज परमतत्त्व की भावना। देखो! यह भावना आयी। ध्रुव आनन्द प्रभु में एकाग्रता, वही भावना। कल्पना ऐसा कहे कि यह पुण्य करना, यह करना, ऐसा नहीं। निज परमात्मतत्त्व निरंजन, जिसमें पर का बिल्कुल अभाव है। **उसकी भावना से उत्पन्न...** ऐसा आनन्दस्वरूप भगवान स्वयं निज, उसकी एकाग्रता से **होनेवाले परम वीतराग सुखामृत के पान में सन्मुख...** हैं वे तो। ओहोहो!

परम वीतराग सुखरूपी अमृत। परम वीतरागी सुखरूपी अमृत के निर्विकल्प पान में वे तो सन्मुख हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव करने में, पान करने में सन्मुख हैं; इसलिए उन्हें कांक्षा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। गजब बातें, भाई! उसमें घण्टे भर में ऐसा आया कि भगवान के भक्ति करना, पूजा करना, दया करना, व्रत करना, ऐसा तो आया नहीं

इसमें। यह वस्तु है, इसकी श्रद्धा-ज्ञान हुए और इसमें स्थिरता हो, उसमें रह न सके, उसे... शुभविकल्प आता है, परन्तु उसकी यहाँ बात नहीं है।

परम वीतराग सुखामृत के पान में... आहाहा! सन्त, उपाध्याय निर्विकल्प आनन्दरस के पान में तत्पर हैं, वहाँ सन्मुख हैं। इच्छा से तो विमुख हैं। आहाहा! यहाँ तो जहाँ थोड़ा बोलना आवे, कहना आवे, वहाँ स्वयं उपाध्याय का पद ले ले। उपाध्याय का ठिकाना (स्थान) ले ले। ऐसा नहीं, भाई! बापू! यह वस्तु अलग है। यह तो वीतरागमार्ग है। अन्तर वीतरागता... आहाहा! निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वभावरत्नत्रय और भगवान के कहे हुए पदार्थों में शूरवीर और स्वयं निज परमात्मतत्त्व, शुद्ध भगवान त्रिकाली ध्रुव में एकाग्रता, वह पर्याय है। निज परमात्मतत्त्व, वह तो त्रिकाली ध्रुव; उसकी भावना, वह पर्याय है। उसमें एकाग्र होने से, एकाग्रता से उत्पन्न होता, वापस ऐसा (कहा)। परम वीतराग सुखामृत। सुखरूपी अमृत अन्तर से प्रकट हुआ। यह मुनियों की दशा होती है, इसे मुनि कहा जाता है।

परम वीतराग सुखामृत के पान में... सुखीरूपी अमृत के पान में **सन्मुख होने से...** वे तो आनन्द के पान में सन्मुख हैं। **होने से ही...** इस कारण से **निष्काँक्षभावनासहित...** लो। **निष्काँक्षभावनासहित...** निष्काँक्षभाव कहा है न? इच्छारहित की भावनासहित है। उसमें उन्हें इच्छा नहीं होती। आहाहा! ऐसा उपदेश करे, बड़ी सभा भरे, अपने मार्ग में नाम निकले। अरे! भगवान! नाम कहाँ? नाम कहाँ था? अन्तर आनन्द के पान में **सन्मुख होने से ही निष्काँक्षभावनासहित — ऐसे लक्षणों से लक्षित, वे जैनों के उपाध्याय होते हैं।** वीतरागमार्ग में जैन में... अन्य में तो कोई है नहीं। परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र तो कहीं है ही नहीं। परन्तु जैनों में ऐसे उपाध्याय होते हैं। इसका श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)